

सठ सुधारहिं सतसंगति पाई



डॉ. कृष्णचन्द्र गोस्वामी*

भारतीय धर्म-साधनाओं के इतिहास में 'सत्संग' का जितना प्रबल आग्रह भक्तिकाल में दृष्टिगोचर होता है; वह अपूर्व है, अद्वितीय है। ध्यान देने की बात यह है कि भक्तिकाल से पूर्व; परम्परा में सत्संग का आग्रह जिस रूप में दिखाई पड़ता है, वह अन्य-अनेक आग्रहों की तरह केवल एक 'नीतिगत-आग्रह' भर ही था। यही कारण है कि 'सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्' जैसे वक्तव्य धर्म-साधना का नहीं; अपितु नीतिपूर्ण आचरण का आग्रह करने वाले 'नीतिशतक' का अंग बने। भर्तृहरि कृत नीति-शतक का यह पूरा श्लोक इस प्रकार है:-

जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति, दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥...

जिसमें भर्तृहरि कहते हैं कि सज्जनों की संगति मनुष्य की बौद्धिक जड़ता और मनोगत दुर्भावना को दूर कर उसे न केवल सत्याचरण के लिए प्रेरित करता है अपितु सर्वदूर उसकी कीर्ति को भी फैलाती है, जिससे वह सदैव प्रसन्न मना रहता है। संसार में किसी भी मनुष्य को इससे अधिक और क्या चाहिए?

भक्तिकाल में व्यक्ति के 'आत्म परिष्कार' पर अधिक बल दिया जाने लगा था। अतः इस कालखंड में हम सत्संग को अधिक महिमावान् होते देखते हैं। तुलसीदास जी ने तो उसे प्रभुकृपा की परमोपलब्धि तक कह दिया है। उनका अनुभव है कि बिना सत्संग के विवेक उद्वुद्ध नहीं होता किन्तु यह सत्संग मिलता तभी है, जब श्रीराम कृपा करते हैं-

बिन सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

वे यहीं नहीं रुके, उनकी दृष्टि में परमार्थ न्याय पर आग्रह होने के लिए मनुष्य के द्वारा अपनाए गए अन्य सब साधन पुष्पवत् हैं और सत्संग की प्राप्ति इन सबका फल है; परलोकोपलब्धि है। वस्तुतः 'जन' को 'सज्जन' में रूपान्तरित कर देने के इस आग्रह ने सामान्यतः समूचे भक्तिकाल और विशेषतः तुलसीदास के अन्तःकरण को बहुत गहराई से रचा है; एक नया रूप दिया है। परम्परा में नवधा भक्ति के विभिन्न शोपानों की चर्चा इस तरह होती रही है- 'श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पाद सेवनम्।

* सेवानिवृत्त स्नातकोत्तर कॉलेज प्राचार्या एवं पूर्व अध्यापिका,
राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी।

अर्चनवन्दनं, दास्यसख्यात्म निवेदनम्।।' श्रीमद्भागवत में वर्णित इस भक्ति के आलम्बन भगवान हैं और आप्रय भक्त हैं। किन्तु गोस्वामी तुलसीदास ने शबरी के प्रसंग में जिस नवधा भक्ति का वर्णन भगवान राम के मुख से करवाया है, उसमें पहली भक्ति ही सत्संग है। इसी क्रम में दूसरी हरिकथा में रति, तीसरी अहंकार शून्य होकर गुरुपद की सेवा, चौथी- भजन और पाँचवी- आराध्य का नाम जय के रूप में वर्णित है। किन्तु तुलसीदास जी ने आगे का चारों भक्ति का आलम्बन भगवान को नहीं भक्त को बना दिया है। उन्हीं के शब्द हैं-

छठ दम सील बिरति बहु करमा।
निरत निरन्तर सज्जन धरमा।।
सतवै सम मोहिमय जग देख्या।
सपनेहुँ नहि देखई परदोषा।।
आठवाँ जथा लाभ संतोषा।
सपनेहुँ नहि देखइ परदोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना।
मम भरोस हिय हरण न दीना।

यह इस कालखंड की एक विलक्षण बात है। भगवान के ऐसे ही भक्तों को तुलसी 'सज्जन' कहते हैं और इन्हीं का साहचर्य उनके दृष्टि में 'सच्चा सत्संग' है। इनका साहचर्य पाकर दुष्ट जन जैसे ही सुधर जाते हैं जैसे पारस के साहचर्य से लोहा सुधर जाता है। क्योंकि इन सज्जनों का पथ्य अपने-परापु, शत्रु-भिन्न आदि की भावना से मुक्त होता है। ऐसे सज्जनों की वन्दना करते हुए गोस्वामी जी लिखते हैं-

बन्दउँ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोई।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ।।

गोस्वामी जी ने सज्जन और असज्जन के गुणों की पृथक-पृथक चर्चा करने के बाद निष्कर्षतः लिखा- एक तो ये दोनों अमृत और मदिरा की तरह होते हैं। दोनों का उत्पत्ति स्थान यह संसार-रूपी समुद्र तो एक ही है किन्तु दोनों के गुण भिन्न हैं।

भलौ भलाइहि पै लहि, लहि निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता, गरल सराहिअ श्रीचु।।

प्राचीन साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें सत्संग के प्रभाव से दुष्ट जन अपना मार्ग बदलकर सत्यपथ के पथिक बन जाते हैं। वाल्मीकि ऋषि होने से पूर्व लुटेरे थे- नारद के उपदेश से वे उस वृत्ति को त्याग कर महर्षि के रूप में प्रसिद्ध हुए; आदिकवि का सम्मान उन्हें मिला। इसी तरह; सन्मार्ग से भटकना हुआ अजामिल सन्तों के साहचर्य और परामर्श से मोक्ष को हस्तगत कर सका।

इस प्रकार, हम देखते हैं सत्संगति सन्मार्ग से भटके हुए लोगों को पुनः सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करने में समर्थ है।
